महाश्मशान मणिकर्णिका : काशी का मोक्षदायक स्थल

विश्व में काशी से प्राचीनतम शायद ही ऐसा कोई स्थल या नगर हो, जो निरंतर मोहक, श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखा जाता हो। सहस्त्रों वर्षों से काशी में प्रति हिंदू समाज में ही नहीं, अपितु हिंदुवेतर समाजों में भी बड़ी श्रद्धा रही है। आज भी यह श्रद्धा इतनी प्रगाढ़ है कि भारतवासी ही नहीं , बल्कि पश्चिम वासी भी वाराणसी को ही भारत का सर्वाधिक पुनीत हिंदू- तीर्थ स्थल मानते हैं। इस प्राचीन एवं पवित्र नगर के कई नाम भी प्रचलित रहे हैं, यथा -- बनारस, काशी, वाराणसी, अविमुक्त, श्मशान एवं महाश्मशान आदि।

प्राचीन काल से धार्मिक मान्यता चली आ रही है कि काशी में प्राण त्यागने, अर्थात् मृत्यु होने से मृतक को मुक्ति, अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। संभवतः इसीलिए देश के विभिन्न भागों से अनेक वृद्ध स्त्री- पुरूष मोक्ष प्राप्ति हेतु काशी वास करने के लिए आते हैं, ताकि मृत्योपरांत उन्हें मोक्ष प्राप्त हो और वे ब्रह्म- लोग (स्वर्ग) में निवास कर सकें। जो किन्हीं कारणों वश काशी में प्राण न त्याग कर किसी अन्य स्थान पर प्राण त्यागते हैं, मृतक के परिवार वाले अथवा अन्य संबंधी उनके शव को काशी में दाह- संस्कार हेतु ले आते हैं, ताकि मृतक मोक्ष प्राप्त कर सीधे ब्रह्मलोक का भागी बने और उसका फिर पुनर्जन्म न हो।

यह भावना आस्तिक हिंदुओं में आज के तर्कप्रधान युग में भी पाई जाती है। फिर प्राचीन काल में जब बुद्धि विश्वास- प्रधान थी, तब तो यह प्रवृत्ति अत्यंत ही बलवती रही होगी तथा काशी में मरने की इच्छा से आने वालों की संख्या भी बहुत अधिक रही होगी। काशी में मरने का यहाँ तक समर्थन था कि यहाँ नियमित रूप से आत्महत्या करने की भी परंपरा थी। शास्त्रों में इसकी आज्ञा थी और उसका स्पष्ट विधान भी था। यद्यपि काशीवास के नियमों में शरीर की रक्षा करने का आग्रह भी था, क्योंकि उससे चिरकाल तक साधना का अवसर मिलता है। इसका उल्लेख त्रिस्थली सेतु नामक पुस्तक के पृष्ठ २९८ पर निम्नवत् मिलता है --

''आत्मरक्षात्र कर्त्तव्या महाश्रेयोद्यभिवृद्धये।
अत्रात्मत्यजनोपायं मनसापि न चिंतये।।''

महाश्मशान का अर्थ : इतिहास एवं विस्तार

मोक्ष प्राप्ति की भावना तथा शास्त्रसम्मत् आत्महत्या की परंपरा के फलस्वरूप काशी में मरने वालों की संख्या अधिक होने

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

के कारण, श्मशान स्थल भी अति विस्तृत रहा होगा, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। संभवतः इसीलिए काशी को महाश्मशान भी कहा जाता है। वैसे काशी (वाराणसी) क्षेत्र को महाश्मशान कहने का कारण, पुराणों में यह भी दिया गया है कि महाप्रलय के समय सभी महातत्व शव के रूप में शयन को प्राप्त होते हैं, अतः इस क्षेत्र को महाश्मशान कहा जाता है। काशी खण्ड नामक पुस्तक में इसका वर्णन निम्नवत् मिलता है --

''श्मशब्देन शवः प्रोक्तः शानं शयनमुच्यते।
निर्वचन्ति श्मशानार्थ मुने शब्दार्थकोविदाः
महान्त्यपि च भूतानि प्रलये समुपस्थिते।''
(काशी खण्ड, ३०/१०३-१०४
)

इसके अतिरिक्त महाश्मशान शब्द का अर्थ स्कंद पुराण, मत्स्य पुराण आदि ग्रंथों में भी यत्र- तत्र विभिन्न पर्यायों के रूप में वर्णित है, यथा-- अविमुक्त, आनंद कानन श्मशान या महाश्मशान आदि।

गुप्तकाल के पूर्व से ही मणिकर्णिका को वाराणसी का सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थल माना जाता था और आज भी वह वाराणसी के प्रमुख तीर्थों में से एक माना जाता है। इसका विस्तार उत्तर दिशा में हरिश्चंद्र मण्डप से (जो संकठा घाट के ऊपर है) दक्षिण में गंगाकेशव तक (जो गंगा महल घाट पर था) और पूर्व में स्वर्गद्वार से गंगा के मध्य तक माना जाता है। प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ काशीखण्ड में इसका एक और निम्नवत् परिमाण बताया गया है --

''आ गंगाकेशवच्चैव आहरिश्चंद्रमण्डपात।
आ मध्यादेव सरितः स्वद्वरिन्मणिकर्णिका।।''
(काशी खण्ड, ६१/७३)

''स्थानाद मुष्मात्समराज
सौधात्प्राच्यां-
मनागीश समाश्रितायां।
सव्येद्मपसव्ये च कराः क्रमेण
शतत्रयो-
चापिशत द्वयौ च।।
हस्ताः शतं पंच सुरापगाया
मुदीच्य
वाच्योर्मणिकर्णिकेयम।''
(काशी खण्ड, ९९-५३-५४)

अर्थात् मोक्ष द्वार से पूर्व ईशान कोण में तीन सौ हाथ (१५० गज : हरिश्चंद्र मण्डप तक), और अग्नेय कोण में दो सौ हाथ (१०० गजः गंगाकेशव तक) तथा गंगा की धारा में उत्तर और दक्षिण पाँच सौ हाथ, यह मणिकर्णिका का परिमाण

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

है।

वाराणसी की श्मशान परंपरा

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मोक्ष प्राप्ति की प्रवृति तथा धर्म- समर्थित आत्महत्या की परंपरा के फलस्वरूप, काशी में मरने वालों की बहुलता थी। अतः वाराणसी का श्मशान भी निस्संदेह अति विस्तृत रहा होगा। मणिकर्णिका से वर्तमान चौक, राजा दरवाजा लेता हुआ बेनिया तालाब तक, जिसका नाम ही पहले अस्थिक्षेप तड़ाग और बाद में हड़हा तालाब हुआ और इससे भी आगे जा कर लक्ष्मी कुण्ड तक वाराणसी का श्मशान था। उत्तर में वरुणा तट पर भी श्मशान था। अभी विगत ढ़ाई- तीन सौ वर्ष पहले तक वर्तमान आधुनिक चौक में चितायें जला करती थीं, जिनकी अस्थियों के अवशेष गंगा तथा हड़हा तालाब में डाले जाते थे।

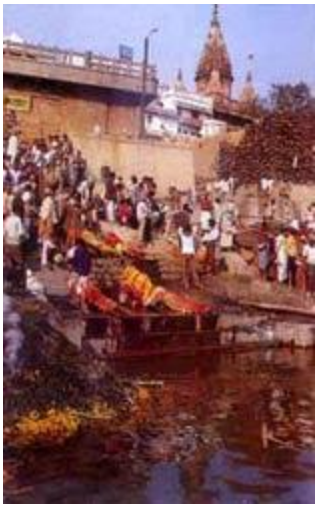

मणिकर्णिका घाट पर शवदाह परंपरा

ऊपर हम कह चुकें हैं कि मणिकर्णिका वाराणसी का एक प्रमुख तीर्थ स्थल रहा है, जो पहले पुष्करिणी नाम से जाना जाता था। इसकी भी अपनी एक रोचक कथा है, जो काशीखण्ड (२६, ५१- ६३ एवं त्रिस्थली सेतु पृष्ठ १४५- ४६) में निम्नवत् वर्णित है -- '' एक बार भगवान विष्णु ने अपने चक्र से एक पुष्करिणी (कुण्ड या गडढ़ा) खोदा। उसे अपने पसीन से भर दिया और १०५० वर्षों तक इसके तट पर घोर तपस्या की, जिससे भगवान शिव वहाँ चले आये और प्रसन्न होकर उन्होंने अपना सिर हिलाया, जिसके फलस्वरूप रत्न- मणि आदि जटिल उनका कर्णाभूषण उस पुष्करिणी (कुण्ड) में गिर पड़ा। इस प्रकार इसका नाम मणिकर्णिका कुण्ड पड़ा।'' धार्मिक मान्यता है कि इस कुण्ड में स्नान करने से निस्संदेह मनुष्य मोक्ष लाभ कर स्वर्ग को प्राप्त होता है।

मणिकर्णिका घाट पर शवदाह परंपरा का आरंभ लगभग २२५ या २३० वर्ष पूर्व से (सन् १७७५ या १७८० के आसपास) ही हुआ है। इसका भी अपना एक रोचक प्रकरण है। कहा जाता है कि वाराणसी के एक पुराने रईस और अवध के नवाब सफदरजंग के तोपखाने के खजांची लाला कश्मीरी मल खत्री अपनी माँ के शव- दाह संस्कार हेतु हरिश्चंद्र घाट पर आये, तो वहाँ पहले से ही अन्य कई शव जलाये जाने हेतु पड़े थे तथा लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। लाला जी ने वहाँ के

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा

डोम चौधरी से आग्रह किया कि उन्हे प्राथमिकता देकर पहले शव जलाने की अनुमति दें, जिसे पर डोमराजा ने कर- स्वरूप भारी रकम माँगी। लाला जी इस बात से सहमत भी हो गये। किंतु शव के साथ आये, पहले से ही प्रतीक्षारत लोगों से लालाजी का तीव्र विरोध हो गया। जिसके परिणामस्वरूप लालाजी क्रोधित हो गये और अपनी माँ का शव वापस लौटाकर मणिकर्णिका घाट पर आए। जहाँ पर उन्होंने जमींदारों घाट के पंडों और पुरोहितों से अपनी माँ के शव जलाने हेतु थोड़ी जमीन माँगी। पण्डे और पुरोहित लालाजी की रईसी तबियत से पूर्व परिचत थे। उन्होंने मजाक से ही कह दिया कि लालाजी आप जितनी जमीन चाँदी के सिक्कों से ढंक दीजिएगा, उतनी ही जमीन पर आपको शव जलाने की अनुमति दे दी जायेगी। लालाजी ठहरे मूडी आदमी। मणिकर्णिका घाट की जमीन पर उन्होंने सिक्के बिछवा दिये और उसी स्थान पर अपनी माँ का दाह- संस्कार किया। सुना जाता है कि मारे गुस्से में लालाजी ने कुल साठ बोरे चाँदी के सिक्के बिछवाये थे, जिनमें थोड़ी सोने की मुहरें भी थी। बाद में उन्होंने वहाँ सात चबूतरे बनवाये, जो विभिन्न जातियों के शवदाह हेतु निश्चित थे। स्वजातीय लोगों के लिए लाला कश्मीरी मल ने एक मजबूत और अन्य चबूतरों से थोड़ा ऊँचा चबूतरा बनवाया, जो आज भी विद्यमान है। इस चबूतरे पर दाह- संस्कार के बाद सारस्वत और खत्री लोग सफाई के निमित्त पूर्व में हुये कांट्रेक्ट के मुताबिक डोम चौधरी को मात्र सवा चार आने पैसा आज भी अदा करते हैं।

चरणपादुका पर शव- दाह परंपरा

मणिकर्णिका घाट पर ही थोड़ा ऊपर पुष्करिणी (मणिकर्णिका कुण्ड) के निकट एक ऊँचा चबूतरा है, जो चरणपादुका के नाम से विख्यात है। इसके संबंध में भी एक पौराणिक कथा तथा एक रोचक प्रसंग मिलता है। पौराणिक कथा के अनुसार भगवान विष्णु इसी स्थान से होकर पुष्करिणी पर ध्यानस्थ हुए। एक स्थान पर मिट्टी गीली होने के कारण उनके पैरों की थोड़ी गहरी छाप पड़ गई थी। बाद में यह स्थल चरणपादुका के नाम से विख्यात हुआ। धीरे- धीरे यह स्थल धार्मिक मान्यताओं के अंतर्गत लोकचर्चा का विषय बना और यह कहा जाने लगा कि इस स्थल पर शवदाह करने से जीवात्मा मोक्ष प्राप्त करती है।

बाद में चलकर लगभग सन् १८६२ के आसपास, तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट की आज्ञा से चरणपादुका पर शवदाह की परंपरा आरंभ हुई। इस संबंध में भी एक रोचक प्रसंग प्रकाश में आया है कि वाराणसी के एक और प्राचीन रईस शाह परिवार और लाला कश्मीरी मल में रईसी और संपन्नता की प्रतिस्पर्धा में बराबर ठना- ठनी होती रहती थी। हर समय लोग एक- दूसरे को नीचा दिखाने का अवसर खोजा करते थे। चूँकि कश्मीरी मल ने मणिकर्णिका घाट पर शवदाह की एक नयी परंपरा कायम की थी, जो शाह परिवार के लिए प्रतिष्ठा एवं प्रतिस्पर्धा का विषय बन गया था। अतः शाह परिवार ने तत्कालीन काशी नरेश, गोपाल मंदिर के गोस्वामी, राय परिवार तथा काशी के कुछ अन्य प्रतिष्ठित जमींदारों को अपने साथ शामिल कर येन- केन- प्रकारेण तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट एफ. डब्लू. पोर्टर से चरणपादुका पर शवदाह करने हेतु आदेश प्राप्त कर लिये।

इ स स्थल पर शवदाह करने हेतु बाद में यह शर्त निर्धारित की गई कि उपर्युक्त छः परिवारों में से किन्हीं दो परिवार के सदस्य जब किसी को लिखित अनुमति प्रदान करेंगे, तभी जिला प्रशासन चरणपादुका पर शवदाह की अनुमति देगा। कालांतर में सिर्फ काशी नरेश और जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति से ही शव- दाह किये जाने लगे। इस प्रकार सक्षम, संपन्न एवं प्रतिष्ठित नामी व्यक्तियों के लिए शवदाह की एक और नई परंपरा की शुरुआत हुई।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

चरण पादुका पर प्रथम दाह- संस्कार १८६३ ई. में तथा अंतिम दाह संस्कार ८ मई सन् १९७९ के पूर्व तक हुआ था। बाद में काशी के प्रधान तीर्थ पुरोहित पं. अंजनीनंदन मिश्र के नेतृत्व में ''चरण पादुका पर शवदाह बंद करो'' अभियान चलाया गया, जिसे स्व. स्वामी करपात्री जी, चारों पीठों के शंकराचार्यों, काशी विद्वत् परिषद् सहित अन्य दूसरे लोगों का भारी समर्थन मिला। इन लोगों ने बताया कि चरण पादुका जैसे पवित्र स्थल पर शवदाह संस्कार शास्त्रोचित और तर्कसंगत नहीं है। इसके अलावा छः परिवारों में से चार परिवारों के सदस्यों ने भी वाराणसी के जिला मजिस्ट्रेट को चरण पादुका पर शवदाह न किये जाने के पक्ष में लिखकर दे दिया, जिसके परिणामस्वरूप इस स्थल पर शवदाह न किये जाने के कड़े आदेश जिला प्रशासन द्वारा पारित किये गये। इस प्रकार चरण पादुका पर शव जलाये जाने की परंपरा का अंत हो गया।

श्मशान की व्यवस्था एवं संचालन

मणिकर्णिका एवं हरिश्चंद्र घाट पर शवदाह व्यवस्था का संचालन और नियंत्रण काशी के डोम राजाओं के अधीन होता है। ये अपने को यज्ञकाल का वंशज मानते हैं। वर्तमान डोमराजा कैलाश व ईश्वर चौधरी से निरंतर एवं अनगिनित प्रयासों के पश्चात हुई भेंटवार्ता में अनेक तथ्य प्रकाश में आये। पैंसठ वर्षीय कैलाश चौधरी ने बताया कि -- ''वंश परंपरा के खाते तथा अन्य दूसरे पुराने कागजात सन् १९४८ की बाढ़ में मकान गिरने से नष्ट हो गये। फिर भी वाराणसी में आकर यहाँ राजा हरिश्चंद्र के बिकने के बाद से हम लोग डोम राजा के नाम से जाने जाते हैं। आप चाहें तो हमें राजा हरिश्चंद्र का वंशज मान सकते हैं।''

डोमराजा का आय- स्रोत

डोम राजाओं (कैलाश व ईश्वर चौधरी) से और भी अन्य दूसरे तथ्यों का पता चला कि उनके परिवारों एवं कर्मचारियों का भरण- पोषण मणिकर्णिका और हरिश्चंद्र घाट पर मिले कर से ही होता है। न्यूनतम कर, आम तौर से बीस आना है, जिसे वे (डोमराजा) राजा हरिश्चंद्र द्वारा तय किया मानते हैं, किंतु घाट पर कम- से- कम ग्यारह या इक्कीस से लेकर पाँच सौ एक रुपये तक कर के रूप में लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त धनी परिवार के बुजुर्ग सदस्यों के शव पर चढ़े कीमती दुशाले एवं चद्दर भी भेंट स्वरूप डोमराजा को दे दिये जाते हैं। नई दुल्हन या सुहागिन औरतें के मरने पर उनके वस्त्राभूषण भी यदा- कदा दान- स्वरूप इन्हें मिल जाते हैं। इसके अलावा टिकठियों के बचे हुए बाँस आदि को डलिया बनाने वालों तथा चिक बनाने वालों को भी बेच कर पैसे मिल जाते हैं।

दोनों घाटों पर औसतन दो सौ शव (१०५ मणिकर्णिका और ७५ हरिश्चंद्र) प्रतिदिन जलाये जाते हैं, जिससे सामान्य अनुमान के अनुसार डोमराजा की आय लगभग बीस से तीस हजार रूपये प्रतिदिन है। किंतु डोमराजा कैलाश चौधरी ने इसे गलत बताया। घाट पर लगभग डेढ़ सौ कर्मचारी कार्यरत है, जो इन्हीं के परिवार से संबंधित बताये जाते हैं। इन कर्मचारियों में मैनेजर, पुरजी लिखने वाले, सफाई करने वाले, पानी लाने वाले, लकड़ी ढ़ोने वाले तथा चिता सजाने वाले आदि हैं। दाह- संस्कार चौबीसों घण्टे निंरतर चलता रहता है। दो पालियों में कर्मचारियों की ड्यूटी बदलती है। डोम परिवार तेरह हिस्सों में विभाजित हैं, जिनमें प्रमुख ईश्वर व कैलाश चौधरी है। आमदनी का अधितय हिस्सा कैलाश चौधरी लेते हैं।

जनसाधारण में फैली हुई अपनी आर्थिक संपन्नता की भ्रांतियों को नकारते हुए डोमराजा ने बताया कि -- ''आप तो स्वयं ही भली- भाँति जानते हैं कि महंगाई दिनोंदिन कितनी बढ़ती जा रही है। उसी हिसाब से खर्च भी बढ़ रहा है। हम लोग डोम हैं। आस- पास के गली- मोहल्ले वाले भी हमसे दूर रहते हैं। मैं भी उनकी परवाह नहीं करता हूँ।'' उनके इस वाक्य का दर्द बता रहा था कि उस महान, स्पष्टवक्ता, मस्त, कूटनीतिज्ञ व्यक्ति का व्यक्तित्व ही रहस्यमय है और उनकी बातचीत का तौर- तरीका, हँसी आदि नितांत खोखली और ऊपर से ओढ़ी हुई लगती हैं, किंतु अंदर- ही- अंदर उसे कहीं कोई दुख सालता रहता है। कहीं कोई ग्रंथि है, जिसे अत्यंत बुद्धिमान एवं व्यवहार कुशल होने के बावजूद वह भुला नहीं पा रहा है।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अंत में, अपनी आंतरिक व्यथा को निःश्वास छोड़ते हुए उन्होंने बताया''मैं डोम हूँ -- डोम राजा कहिये या चौधरी। शव जलाता हूँ। दाह संस्कार नीच कर्म है न, इसलिए लोग अपना बोझा हमारे सिर फेंक देते हैं। शव जलाने पर पाप लगता है न, हम उस पाप के भागी बनते हैं और बदले में कर लेते हैं। इसलिए हम नीच समझे जाते हैं। मेरे हाथ का छुआ पानी तो दूर रहा, लोग हमें अपने पास तक नहीं बैठाते हैं।''

बातचीत से स्पष्ट है कि डोम राजा अपने वर्तमान से संतुष्ट नहीं है, लेकिन इसके निवारण के लिए कुछ न कर पा सकने की विवशता है। फिर भी इसी में उसका अस्तित्व, ऐश्वर्य सभी कुछ निहित है।

घाट पर किये गये एक सर्वेक्षण से ऐसी बातें प्रकाश में आई हैं, जो जन- साधारण में तीव्र आक्रोश का कारण बनती हैं --

१. डोम राजा के कर्मचारियों द्वारा दाह- संस्कार करने वालों के पारिवारिक स्तर और प्रतिष्ठा के हिसाब से कर- स्वरूप मनमाना पैसा वसूल करना।
२. वाँछित धन- राशि न प्राप्त होने पर अभद्र व्यवहार एवं गाली- गलौल करना।
३. गरीबों, असहायों एवं गैर जानकार व्यक्तियों से भी मनमाना कर वसूल करना तथा उन पर ज्यादती करना।
४. नगर महापालिका द्वारा प्रस्तावित विद्युत शवदाह गृह का डोमराजा तथा धर्म के अंधानुयायियों द्वारा विरोध।
५. घाट के दुकानदारों द्वारा दाह- संस्कार में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों को दुगना- चौगुना दाम वसूल करना।
६. ठेके पर लाश जलाने की प्रथा आदि।

उपर्युक्त कुछ ऐसी बातें हैं, जिन पर सरकार द्वारा शीघ्रातिशीघ्र हस्तक्षेप किया जाना नितांत ही आवश्यक एवं अपेक्षित है। कुछ ऐसे नियम निर्धारित किये जाये और उनका समय- समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिये कि घाट के व्यवस्थापक एवं उनके कर्मचारी उन नियमों का पालन उचित ढ़ग से कर रहे हैं अथवा नहीं। जैसे - दाह- संस्कार हेतु उचित और निम्नतम कर- निर्धारण। दाह- संस्कार में प्रयुक्त सामग्रियों के मूल्य का निर्धारण तथा समस्त दूकानदारों को मूल्य- सूची टांगने का निर्देश। घाट पर कर्मचारियों द्वारा ठेके पर लाश जलाने की प्रथा का अंत। विद्युत- शव- दाह गृह की स्थापना के बावजूद, लकड़ी द्वारा शवदाह और विद्युत द्वारा शवदाह में से एक विकल्प चुनने की मृतक के परिवार वालों को छूट। साथ ही वे किसी प्रकार से घाट के व्यवस्थापक अथवा उनके कर्मचारियों द्वारा विशेष विधि से दाह- संस्कार करने हेतु बाध्य न किये जायें।

ये कुछ ऐसे सुझाव हैं, जिनमें सुधार की अपेक्षा साधारण जनता अपने जिला एवं राज्य प्रशासन से करती है। यदि उपर्युक्त सुविधायें और व्यवस्था जिला प्रशासन और राज्य सरकार उपलब्ध कराने में सफल हो जाती है, तभी ''काश्याम् मरणान् मुक्ति'' जैसी पवित्र धार्मिक मर्यादा की रक्षा संभव है, अन्यथा नहीं।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.